JAYJINENDRA

CHHADHALA PRESENTATION

BY

SAURABH & GAURAV JAIN INDORE (INDIA)

चौथी ढाल

मुक्तिमार्ग का दूसरा चरण - सम्यग्ज्ञान एवं देशचारित्र

सम्यग्ज्ञान का लक्षण
सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में अन्तर
सम्यग्ज्ञान के भेद-प्रभेद एवं महिमा
सम्यग्ज्ञान का महान फल और
उसके अभाव में सब निष्फल
सम्यग्ज्ञान के उद्यम का उपदेश
सम्यग्ज्ञान की महिमा
लाख बात की बात – निज आतम ध्याओ
श्रावकधर्म का निरुपण
पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत
व्रतों के निरतिचार पालन का फल
चौथी ढाल का सारांश

चौथी ढाल में मुक्तिमार्ग के द्वितीय अङ्ग सम्यग्ज्ञान का एवं देशचारित्र का प्रतिपादन किया गया है। इसके अन्तर्गत ज्ञान के पाँच भेद एवं उनके प्रत्यक्ष -परोक्षादि प्रभेदों को स्पष्ट किया गया है। इस जगत में ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कोई सुख का कारण नहीं है। आत्मज्ञान के बिना अनन्तबार मुनिव्रत धारण कर, नौवें ग्रैवेयक तक पहुँच जाने पर भी किञ्चित् मात्र सुख उपलब्ध नहीं हुआ है – ये बहुचर्चित छन्द भी इसी ढाल में आए हैं।

छन्द - १

चौथी ढाल

मुक्तिमार्ग का दूसरा चरण

सम्यग्ज्ञान एवं देशचारित्र

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

सम्यक्श्रद्धा धार पुनि, सेवहु सम्यक्ज्ञान।
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जौ प्रगटावन भान॥

भावार्थ - जिस प्रकार सूर्य, समस्त पदार्थों को तथा स्वयं अपने को यथावत् प्रकाशित करता है; उसी प्रकार जो अनेक धर्मयुक्त निज आत्मा को तथा पर पदार्थों को ज्यों का त्यों प्रकाशित करता है, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। सम्यग्दर्शनसहित सम्यग्ज्ञान का सेवन करना चाहिए।

छन्द २

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का अन्तर

सम्यक् साथै ज्ञान होइ, पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जानि, दुहून में भेद अबाधौ॥
सम्यक् कारण जानि, ज्ञान कारज है सोई।
युगपति होते भी, प्रकास दीपक तें होई॥

यद्यपि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ प्रगट होते हैं, तथापि उन दोनों में निम्न अन्तर हैं —

छन्द २

- दोनों भिन्न-भिन्न गुणों की पर्यायें हैं। सम्यग्दर्शन, श्रद्धागुण की शुद्धपर्याय है और सम्यग्ज्ञान, ज्ञानगुण की शुद्धपर्याय है।

- सम्यग्दर्शन का लक्षण, विपरीत अभिप्रायरहित तत्त्वार्थश्रद्धान है और सम्यग्ज्ञान का लक्षण, संशय-विपर्यय और अनध्यवसाय दोषरहित स्व-पर का यथार्थ निर्णय / ज्ञान है।

- सम्यग्दर्शन, निमित्त अर्थात् कारण है और सम्यग्ज्ञान, नैमित्तिक अर्थात् कार्य है।

छन्द – ३

सम्यग्ज्ञान के भेद-प्रभेदों का स्पष्टीकरण

तासु भेद द्वै हैं, परोक्ष परतक्ष तिनमाहीं।
मति श्रुति दोय परोक्ष, अक्ष मन तें उपजाहीं॥
अवधिज्ञान मनपर्यय, ये हैं देशप्रतक्षा।
द्रव्य क्षेत्र परमाण लिये, जानें जिय स्वक्षा॥

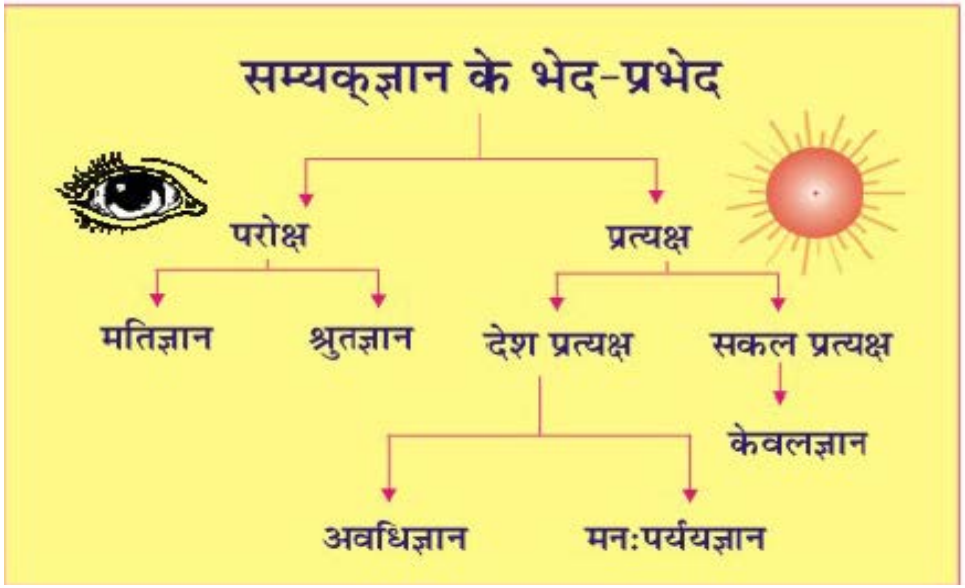

सम्यग्ज्ञान के दो भेद हैं — १. प्रत्यक्ष, और २. परोक्ष।

छन्द - ३

- उनमें मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्षज्ञान हैं क्योंकि ये दोनों ज्ञान, इन्द्रियों तथा मन के निमित्त से वस्तु को अस्पष्ट जानते हैं।

- सम्यक्मति-श्रुतज्ञान स्वानुभवकाल में प्रत्यक्ष होते हैं; क्योंकि उसमें इन्द्रियाँ और मन निमित्त नहीं हैं।

- अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान देशप्रत्यक्ष हैं क्योंकि जीव इन दो ज्ञानों से रूपी द्रव्य को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादापूर्वक स्पष्ट जानता है।

- जो ज्ञान, इन्द्रियों तथा मन के निमित्त से वस्तु को अस्पष्ट जानता है, उसे परोक्षज्ञान कहते हैं।

- जो ज्ञान, रूपी वस्तु को द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव की मर्यादापूर्वक स्पष्ट जानता है, उसे देशप्रत्यक्ष कहते हैं।

छन्द - ४

केवलज्ञान का स्वरूप बताते हुए, ज्ञान की महिमा

सकल द्रव्य के गुण अनन्त, पर्याय अनन्ता।
जानें एकै काल, प्रघट केवलभगवन्ता॥
ज्ञान समान न आन, जगत में सुख कौ कारण।
यह परमामृत जन्म-जरा-मृत रोग निवारण॥

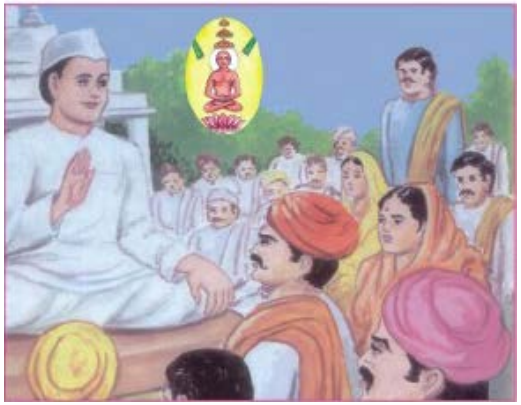

भावार्थ - जो ज्ञान, तीन काल और तीन लोकवर्ती सर्व पदार्थों अर्थात् अनन्त धर्मात्मक सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायों को, प्रत्येक समय में यथास्थित, परिपूर्णरूप से स्पष्ट और एक साथ जानता हे, उस ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं, वह सकलप्रत्यक्ष है।

छन्द - ४

★ केवली भगवान, सभी द्रव्य, गुण और पर्यायों को जानते हैं किन्तु उनके अपेक्षित धर्मों को नहीं जान सकते — ऐसा मानना असत्य है। वे मात्र अपने आत्मा को ही जानते हैं किन्तु सर्व को नहीं जानते — ऐसा मानना भी न्यायविरुद्ध है। वास्तविकता यह है कि केवलीभगवान सर्वज्ञ होने से अनेकान्तस्वरूप प्रत्येक वस्तु को प्रत्यक्ष जानते हैं।

★ इस संसार में सम्यग्ज्ञान के समान सुखदायक अन्य कोई वस्तु नहीं है। यह सम्यग्ज्ञान ही जन्म, जरा और मृत्युरूपी रोगों का नाश करने के लिए उत्तम अमृत -समान औषधि है।

छन्द - ५

ज्ञानी और अज्ञानी का अन्तर
व
आत्मज्ञान के बिना सुखोपलब्धि किसी भी दशा में सम्भव नहीं है –

कोटि जन्म तप तपै, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी कें छिन में, त्रिगुप्ति तें सहज टरैं ते॥
मुनिव्रत धारि अनन्तबार, ग्रैवक उपजायौ।
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ

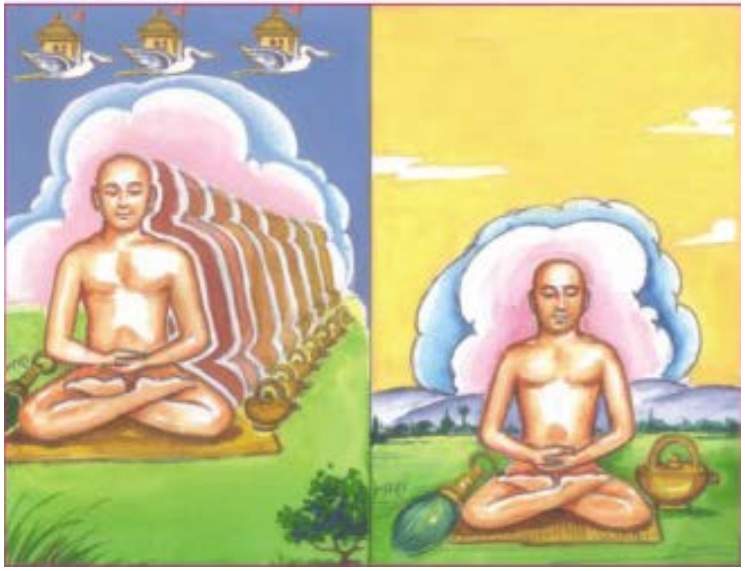

छन्द - ५

भावार्थ - मिथ्यादृष्टि जीव, आत्मज्ञान (सम्यग्ज्ञान) के बिना करोड़ों जन्मों-भवों तक बालतपरूप उद्यम करके, जितने कर्मों का नाश करता है, उतने कर्मों का नाश सम्यग्ज्ञानी जीव, स्वोन्मुख ज्ञातापनेरूप स्वरूपगुप्ति से क्षणमात्र में सहज ही कर डालता है।

यह जीव, द्रव्यलिङ्ग मुनिपना धारण करके एवं महाव्रतों का निरतिचार पालन करके, नववें ग्रैवेयक तक के विमान में अनन्त बार उत्पन्न हुआ, परन्तु आत्मज्ञान अर्थात् सम्यग्ज्ञान अथवा स्वानुभव के बिना, वह लेशमात्र भी सुख प्राप्त नहीं कर सका।

छन्द - ६

दुर्लभ मनुष्यपर्याय को तत्त्वाभ्यास से सफल बनाने की मङ्गलमय प्रेरणा

तातें जिनवर कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै।
संसय विभ्रम मोह त्यागि, आपौ लखि लीजै॥
यह मानुष पर्जाय, सुकुल, सुनिवौ जिनवानी।
यह विधि गये न मिलै, सुमणि जौ उदधि समानी॥

भावार्थ - आत्मा और परवस्तुओं के भेदज्ञान के लिये जिनदेव द्वारा प्ररूपित सच्चे तत्त्वों का पठन-पाठन, मनन करना चाहिए और संशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय — सम्यग्ज्ञान के इन तीन दोषों को दूर करके आत्मस्वरूप को जानना चाहिए।

छन्द - ६

यदि इस अवसर में तत्त्वाभ्यास करके आत्मानुभव नहीं किया तो जिस प्रकार समुद्र में डूबा हुआ अमूल्य रत्न पुनः हाथ नहीं आता; उसी प्रकार मनुष्य शरीर, उत्तम श्रावककुल और जिनवचनों का श्रवण आदि सुयोग भी बीत जाने के बाद पुनः पुनः प्राप्त नहीं होंगे; इसलिए इस अपूर्व अवसर को व्यर्थ न गँवाकर, आत्मस्वरूप की पहिचान अर्थात् सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति करके यह मनुष्य-जन्म सफल करना चाहिए।

छन्द - ७

सम्यग्ज्ञान की महिमा

धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपकौ रूप भयौ, थिर अचल रहावै॥
तासु ज्ञान को कारण, स्व-पर विवेक बखानौं।
कोटि उपाय बनाय भव्य, ताकौं उर आनौ॥

छन्द - ७

- धन-सम्पत्ति, परिवार, नौकर-चाकर, हाथी, घोड़ा तथा राज्यादि कोई भी पदार्थ आत्मा को सहायक नहीं होते, किन्तु सम्यग्ज्ञान आत्मा का स्वरूप है; वह एक बार प्राप्त होने के पश्चात् अक्षय हो जाता है अर्थात् कभी नष्ट नहीं होता, अचल एकरूप रहता है।

- आत्मा और परवस्तुओं का भेदविज्ञान ही उस सम्यग्ज्ञान का कारण है; इसलिए प्रत्येक आत्मार्थी भव्य जीव को करोड़ों उपाय करके भी भेदविज्ञान के द्वारा सम्यग्ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

छन्द - ८

सम्यग्ज्ञान की अपूर्व महिमा बताते हुए कहते हैं कि सम्यग्ज्ञान ही विषयदाह का नाशक है –

जे पूरब शिव गये, जाहि अरु आगे जे हैं।
ते सब ज्ञानतनी महिमा, मुनिनाथ कहै हैं॥
विषय-चाह दव दाह, जगतजन अरन दझावै।
तासु उपाय न आन, ज्ञान घनघान बुझावै॥

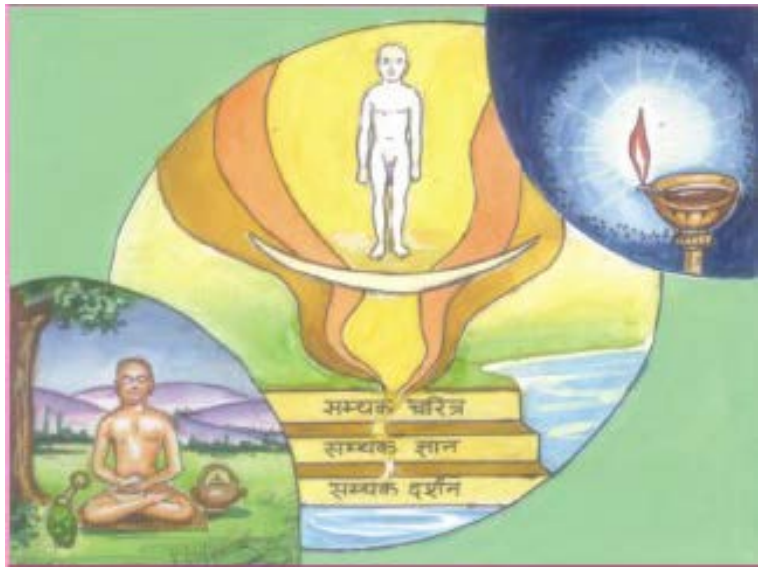

छन्द – ८

भावार्थ – भूत, वर्तमान और भविष्य — तीनों काल में जो जीव, मोक्षसुख को प्राप्त हुए हैं, वर्तमान में विदेहक्षेत्र से हो रहे हैं और भविष्य में होंगे, वह इस सम्यग्ज्ञान का ही प्रभाव है — ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है।

जिस प्रकार वन में लगी हुई अग्नि अर्थात् दावानल, वहाँ की समस्त वस्तुओं को भस्म कर देता है; उसी प्रकार पाँच इन्द्रियों सम्बन्धी विषयों की इच्छा, संसारी जीवों को जलाती है – दु:ख देती है और जिस प्रकार वर्षा की झड़ी उस दावानल को बुझा देती है; उसी प्रकार यह सम्यग्ज्ञान, विषयों की अग्नि को शान्त कर देता है नष्ट कर देता है।

छन्द - ९

सम्यग्ज्ञान के सम्पूर्ण कथन का सारभूत तात्पर्य

पुन्य-पाप फलमाहि, हरख बिलखौ मति भाई।
यह पुद्गल पर्जाय, उपजि बिनसै थिर थाई॥
लाख बात की बात यहै, निश्चै उर लावौ।
तोरि सकल जग धंध-फंद, नित आतम ध्यावौ॥

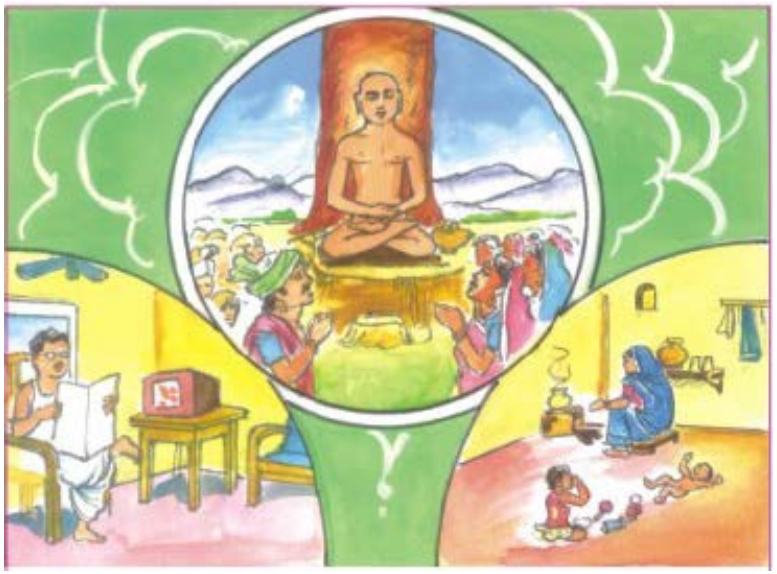

छन्द - ९

◇ **भावार्थ** - आत्मार्थी जीव का कर्तव्य है कि धन, मकान, दुकान, कीर्ति, निरोगी शरीरादि पुण्य के फल से अपना लाभ तथा उनके वियोग से अपनी हानि न माने; क्योंकि परपदार्थ सदा भिन्न हैं, ज्ञेयमात्र हैं; उनमें किसी को अनुकूल-प्रतिकूल अथवा इष्ट-अनिष्ट मानना, जीव की भूलमात्र है; इसलिए पुण्य-पाप के फल में हर्ष-शोक नहीं करना चाहिए।

◇ जीव यदि किसी भी परपदार्थ को भला या बुरा मानता है तो उसके प्रति राग या द्वेष हुए बिना नहीं रहता। जिसने परपदार्थ अर्थात् परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को हितकर अथवा अहितकर माना है, उसने अनन्त परपदार्थों को राग-द्वेष करने योग्य माना है और अनन्त परपदार्थ मुझे सुख-दुःख के कारण हैं — ऐसा भी माना है; यह मान्यता भूलयुक्त है। इसलिए उस भूल को छोड़कर, निज ज्ञानानन्द स्वरूप का निर्णय करके, स्वान्मुख होकर ज्ञाता-दृष्टा रहना ही सुखी होने का एकमात्र उपाय है।

छन्द - ९

- पुण्य-पाप का बन्ध, पुद्गल की पर्यायें / अवस्थाएँ हैं, उनके उदय में प्राप्त संयोग भी क्षणिक संयोगरूप से आते-जाते हैं। जितने काल तक वे निकट रहें, उतने काल भी सुख-दुःख देने में समर्थ नहीं हैं।

- सनातन वस्तुधर्म अर्थात् जैनधर्म के समस्त उपदेश का सार यही है कि शुभाशुभभाव संसार है; इसलिए उनकी रुचि छोड़कर, स्वान्मुख होकर निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक निज आत्मस्वरूप में एकाग्र / लीन होना ही जीव का कर्तव्य है।

छन्द - १०

सम्यग्ज्ञान का विषय पूर्णकर, सम्यक्चारित्र धारण करने की प्रेरणा

सम्यक्ज्ञानी होय, बहुरि दिढ़ चारित लीजै।
एकदेश अर सकलदेश, तसु भेद कहीजै॥
त्रस हिंसा कौ त्याग, वृथा थावर ण संघारै।
पर-वधिकार कठोर निंद, नहीं बैन उचारै॥

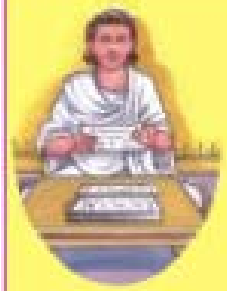

चारित्र के भेद

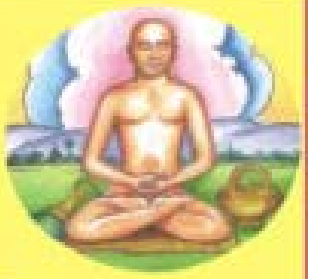

- एकदेश
  - अणुव्रत
    - अहिंसा
    - सत्य
    - अचौर्य
    - ब्रह्मचर्य
    - अपरिग्रह
  - गुणव्रत
    - दिग्व्रत
    - देशव्रत
    - अनर्थदण्ड त्याग
      - अपध्यान
      - पापोपदेश
      - प्रमादचर्या
      - हिंसादान
      - दु:श्रुति
  - शिक्षाव्रत
    - सामायिक
    - प्रोषधोपवास
    - भोगोभोग परिमाण
    - अतिथि संविभाग
- सकलदेश

छन्द - १०

भावार्थ - सम्यग्ज्ञान प्राप्त करके सम्यक्चारित्र प्रगट करना चाहिए। उस सम्यक्चारित्र के दो भेद हैं — (१) एकदेश अर्थात् अणु / देश, अथवा स्थूलचारित्र, और (२) सर्वदेश अर्थात् सकल / महा, अथवा सूक्ष्मचारित्र। उनमें सकलचारित्र का पालन मुनिराज करते हैं और देशचारित्र का पालन श्रावक करते हैं।

१. अहिंसा अणुव्रत - त्रस जीवों की सङ्कल्पी हिंसा का सर्वथा त्याग करके, निष्प्रयोजन स्थावर जीवों का घात न करना, वह अहिंसा अणुव्रत है। अहिंसा अणुव्रत का धारण करनेवाला जीव 'यह घात करने योग्य है, मैं इसे मारूँ' — इस प्रकार सङ्कल्पसहित किसी त्रस जीव की हिंसा नहीं करता किन्तु इस व्रत का धारी आरम्भी, उद्योगिनी तथा विरोधिनी हिंसा का त्यागी नहीं होता।

२. सत्य अणुव्रत - दूसरे के प्राणों को घातक, कठोर और निंद्यनीय वचन न बोलना, न दूसरों से बुलवाना, और न अनुमोदना करना, सत्य अणुव्रत है....।

छन्द - ११

अणुव्रतों का स्वरूप पूर्ण करके कविवर गुणव्रतों का कथन प्रारम्भ करते हैं –

जल-मृतिका विन और नहीं कछु ग्रहै अदत्ता।
निज वनिता बिन सकल नारि सौं रहै विरक्ता॥
अपनी शक्ति प्रमाण, परिग्रह थोरौ राखै।
दश दिश गमन प्रमाण गनि, तसु सीम न नाखै॥

श्रावक के शेष अणुव्रतों का स्वरूप इस प्रकार है —

३. अचौर्य अणुव्रत - जन-समुदाय के लिए जहाँ रोक न हो तथा किसी विशेष व्यक्ति का स्वामित्व न हो, वहाँ के पानी तथा मिट्टी के अतिरिक्त, जिस पर अपना स्वामित्व न हो — ऐसी प्रत्येक परायी वस्तु उसके स्वामी के दिये बिना न लेना तथा उठाकर दूसरे को न देना, अचौर्य अणुव्रत है।

छन्द - ११

४. ब्रह्मचर्य अणुव्रत - अपनी विवाहित स्त्री के सिवा, अन्य सर्व स्त्रियों से विरक्त रहना, ब्रह्मचर्य अणुव्रत है। पुरुष को चाहिए कि अन्य स्त्रियों को माता, बहिन और पुत्री के समान समझे तथा स्त्री को चाहिए कि अपने स्वामी / पति के अतिरिक्त अन्य सभी पुरुषों को पिता, भाई और पुत्र के समान समझे।

५. परिग्रहपरिमाण अणुव्रत - अपनी शक्ति और योग्यता का ध्यान रखकर, जीवनपर्यन्त के लिए धन-धान्यादि बाह्य परिग्रह का परिमाण / मर्यादा बाँधकर, उससे अधिक की इच्छा न करना, परिग्रहपरिमाण अणुव्रत हैं।

छन्द - ११

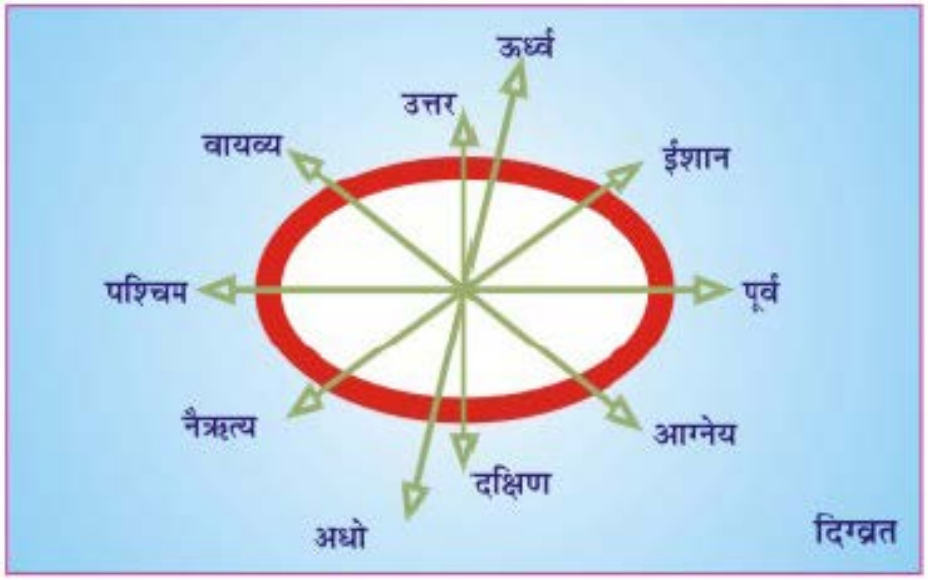

श्रावक के तीन गुणव्रतों में से दिग्व्रत का स्वरूप कहते हैं —

१. **दिग्व्रत** - दशों दिशाओं में आने-जाने की मर्यादा निश्चित करके, जीवनपर्यन्त उसका उल्लंघन नहीं करना, दिग्व्रत है। इसमें दिशाओं की मर्यादा निश्चित की जाती है; इसलिए इसे दिग्व्रत कहा जाता है।

छन्द - १२

श्रावकदशा में होनेवाले शेष गुणव्रतों का स्वरूप

ताहू में फिरि ग्राम गली, गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान ठानि, अनि सकल निवारा॥
काहू कैं धन हानि, किसी जय हार न चिन्तैं।
देइ न सो उपदेश, होय अघ वनिज कृषी तें॥

छन्द - १२

यहाँ श्रावक के तीन गुणव्रतों का वर्णन है।

२. देशव्रत - पूर्व छन्द में वर्णित दिग्व्रत में जीवनपर्यन्त की गयी जाने-आने के क्षेत्र की मर्यादा में भी, घड़ी, घण्टा, दिन, महीना आदि काल के नियम से किसी प्रसिद्ध ग्राम, मार्ग, मकान तथा बाजार तक जाने -आने की मर्यादा करके, उससे आगे की सीमा में न जाना, देशव्रत कहलाता है।

३. अनर्थदण्डत्यागव्रत - बिना प्रयोजन मन-वचन-काय की अशुभ प्रवृत्तियों का त्याग, अनर्थदण्ड त्यागव्रत कहलाता है।

अनर्थदण्डत्यागव्रत के पाँच मुख्य प्रकारों का वर्णन इस प्रकार है —

१. किसी के धन का नाश, पराजय अथवा विजय आदि का विचार न करना, पहला **अपध्यान-अनर्थदण्डत्यागव्रत** है।

२. हिंसारूप पापजनक व्यापार तथा खेती आदि का उपदेश न देना, **पापोपदेश-अनर्थदण्डत्यागव्रत** है....।

छन्द - १३

श्रावकदशा में अनावश्यक पापप्रवृत्तिरूप अनर्थदण्ड नहीं होते। वे अनर्थदण्ड कौन-कौन से हैं, उनका स्वरूप जानना चाहिए –

करि प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरण, नहि दे जस लाधै॥
राग-द्वेष करतार, कथा कबहूँ न सुनीजै।
औरहु अनरथ दंड, हेत अघ तिनें न कीजै॥

भावार्थ - .... ३. प्रमादवश होकर पानी ढोलना, जमीन खोदना, वृक्ष काटना, आग लगाना- इत्यादि का त्याग करना अर्थात् पाँच स्थावरकाय के जीवों की हिंसा नहीं करना, **प्रमादचर्या-अनर्थदण्डत्यागव्रत** है।

छन्द - १३

४. यशप्राप्ति के लिए, किसी के माँगने पर हिंसा के कारणभूत हथियार न देना, **हिंसादान -अनर्थदण्डत्यागव्रत** है।

५. राग-द्वेष उत्पन्न करनेवाली विकथा और उपन्यास या शृङ्गारिक कथाओं के श्रवण का त्याग करना, **दुःश्रुति-अनर्थदण्डत्यागव्रत** है।

छन्द - १४ मुनिधर्म की शिक्षारूप श्रावक को शिक्षाव्रतों का स्वरूप वर्णन

धरि उर समताभाव, सदा सामायक करियै।
पर्व चतुष्टय माहि, पाप तजि प्रोषध धरियै॥
भोग और उपभोग, नियम धरि ममत निवारै।
मुनि कौं भोजन देय फेरि, निज करै अहारै॥

यहाँ श्रावक के चार शिक्षाव्रतों का वर्णन किया गया है —

१. स्वोन्मुखता द्वारा अपने परिणामों को स्थिर करके प्रतिदिन विधिपूर्वक सामायिक करना, **सामायिक शिक्षाव्रत** है।

छन्द - १४

२. प्रत्येक अष्टमी तथा चतुर्दशी के दिन कषाय और व्यापारादि कार्यों को छोड़कर (धर्मध्यानपूर्वक) उपवास करना, **प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत** है।

३. परिग्रहपरिमाण-अणुव्रत में निश्चित की हुई भोगोपभोग की वस्तुओं में जीवनपर्यन्त के लिए अथवा किसी निश्चित समय के लिए नियम करना, **भोगोपभोगपरिमाण शिक्षाव्रत** है।

४. निर्ग्रन्थ मुनि आदि सत्पात्रों को आहार देने के पश्चात् स्वयं भोजन करना, **अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत** है।

छन्द - १५

श्रावकव्रत का फल

बारह व्रत के अतीचार, पन पन न लगावै।
मरण-समय सन्यास धारि, तसु दोष नसावै॥
यौं श्रावक-व्रत पालि, स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहाँ तें चय नर जन्म पाय, मुनि ह्वै सिव पावै॥

भावार्थ - जो जीव श्रावक के ऊपर कहे हुए बारह व्रतों का विधिपूर्वक जीवनपर्यन्त पालन करते हुए, उनके पाँच-पाँच अतिचारों को भी टालता है और मृत्युकाल में पूर्वोपार्जित दोषों का नाश करने के लिए विधिपूर्वक समाधिमरण (संल्लेखना) धारण करके उसके पाँच अतिचारों को भी दूर करता है, वह आयु पूर्ण होने पर, मृत्यु प्राप्त करके सोलहवें स्वर्ग तक उत्पन्न होता है। फिर देवायु पूर्ण होने पर मनुष्यभव पाकर, मुनिपद धारण करके मोक्ष अर्थात् पूर्ण शुद्धता प्राप्त करता है।

सम्यक्चारित्र की भूमिका में रहनेवाले राग के कारण जीव, स्वर्ग में देवपद प्राप्त करता है क्योंकि धर्म का फल संसार की गति नहीं है किन्तु संवर-निर्जरारूप शुद्धभाव है और धर्म की पूर्णता सो मोक्ष है।

END OF THE THIRD DHAL

CONTACT INFORMATION

Email- jainsaurabhjain15@gmail.com

Email-dparihantsaurabh@yahoo.co.in

U.S. contact
Email-jainadhyatma@gmail.com

Email-rajnigosalia@hotmail.com